

विज्ञान की प्रकृति का शिक्षण

अरविन्द कुमार

विज्ञान की प्रकृति (नेचर ऑफ़ साइंस या एनओएस) को समझना व्यापक रूप से विज्ञान शिक्षण का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अधिगम-प्रतिफल माना जाता है। मगर क्या इसे स्कूली विज्ञान पाठ्यचर्या में शामिल करना ज़रूरी है? क्या हमें स्कूली शिक्षार्थियों को इसके विकसित होते परिप्रेक्ष्यों से परिचित कराना चाहिए? शिक्षाशास्त्रीय अभिगम एनओएस पढ़ाने में कैसे मदद कर सकते हैं?

अधिकांश विज्ञान पाठ्यपुस्तकें विज्ञान की प्रकृति (नेचर ऑफ़ साइंस या एनओएस) पर एक परिचयात्मक अध्याय के साथ शुरू होकर, उस पर कुछेक अनुच्छेद अर्पित कर, फिर फुर्ती से उस ओर बढ़ जाती हैं जिसे विज्ञान की मुख्य सामग्री माना जाता है - इसके अनुभवजन्य तथ्य, नियम, सिद्धान्त आदि। स्वाभाविक रूप से, इससे सवाल उठता है - आख़िर एनओएस पढ़ाना इतना ज़रूरी क्यों है, जबकि विषय के 'अधिक महत्त्वपूर्ण' हिस्से पूरे करने के लिए ही इतना कम समय होता है?

एनओएस क्यों पढ़ाया जाए?

माध्यमिक स्कूल के अन्त तक विज्ञान एक अनिवार्य विषय होता है। इस पड़ाव के बाद, अधिकतर विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा तंत्र से अपना रिश्ता ख़त्म कर देते हैं। वे, जो उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने की ओर बढ़ते हैं, उनमें से केवल एक छोटा हिस्सा ही विज्ञान संकाय (या क्षेत्र) में बने रहना चुनता है। इस संख्या का भी एक लघुतर हिस्सा उन पेशों को चुनता है (जैसे एक शोधकर्ता या वैज्ञानिक का पेशा) जिनमें विज्ञान और उसके अनुप्रयोगों की एक ठोस समझ की ज़रूरत होती है। इसका अर्थ हुआ कि इस बात की सम्भावना बहुत कम है कि स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विज्ञान की विषयवस्तु सम्बन्धी ज्ञान मिडिल और हाई स्कूल के अधिकांश विद्यार्थियों की पेशेवर ज़िन्दगियों में सीधे तौर पर मददगार हो। तब फिर स्कूली स्तर पर विज्ञान शिक्षण अनिवार्य क्यों है? साफ़ है कि ऐसा तभी सार्थक होता अगर इसका मुख्य उद्देश्य किसी विशेष विज्ञान विषयवस्तु के प्रसार से बढ़कर कुछ हो।

हालाँकि स्कूली विज्ञान शिक्षण के लक्ष्यों पर अक्सर अलग-अलग विचारधाराओं के पक्षों से अनन्त बहस हुई है, तब भी शायद ही कोई इस बात से असहमत होगा कि एक प्रधान लक्ष्य विज्ञान-जानकार नागरिकों का निर्माण करना है। शिक्षार्थियों के लिए यह ज़रूरी है कि वे ऐसे नागरिकों के रूप में विकसित हों जिन्हें इसका एहसास हो कि विज्ञान किस बारे में है, नए विज्ञान के निर्माण में कैसी विधियाँ और प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं और विज्ञान किस तरह टेक्नोलॉजी और समाज से जुड़ा हुआ है। मिसाल के तौर पर, कुछ लोग तर्क करेंगे कि विज्ञान जीवन

बॉक्स-1 : **एनओएस पर उभरते परिप्रेक्ष्य** : आधुनिक विज्ञान 16वीं और 17वीं शताब्दी में गैलीलियो, डेकार्ट, केपलर और न्यूटन के कार्य से उभरा। यही समय था जब फ्रांसिस बेकन, एक अँग्रेज़ी दार्शनिक, ने वह सूत्रित किया जिसे आज वैज्ञानिक पद्धति के तौर पर जाना जाता है (**देखें चित्र-1**)। मोटेतौर पर कहें तो, स्कूली विज्ञान पाठ्यपुस्तकों के परिचयात्मक अनुच्छेद एनओएस पर बेकन के विचारों को दोहराते हैं। बेकन के विचारों का सार यह है कि विज्ञान प्रकृति के निष्पक्ष अवलोकनों और नियंत्रित प्रयोगों के आधार पर किया गया एक सामान्यीकरण है। प्राकृतिक परिघटनाओं का पूर्वकथन करने और उन्हें नियंत्रित करने की इस नई पद्धति की अपार शक्ति को बेकन ने पहले ही भाँप लिया था।

20वीं शताब्दी की शुरुआत में, विज्ञान के दार्शनिकों के एक प्रभावशाली समूह, विएना सर्कल (जिसमें मॉरिट्ज़ श्लिक, रूडोल्फ़ कार्नअप और अन्य शामिल थे) ने वैज्ञानिक पद्धति के एक अधिक सख़्त संस्करण को सूत्रित करने की ज़हमत उठाई। संक्षिप्त में, वे किसी कथन या अभिकथन को केवल तब ही सार्थक मानते थे जब वह या तो तार्किक रूप से स्वयंसिद्ध हो या फिर उसे सत्यापन योग्य किसी रूप में पेश किया जा सकता हो। इसका अर्थ होता कि हालाँकि कोई सहूलियत के लिए 'परमाणु', 'जीन' और 'संयोजकता' जैसे सैद्धान्तिक पदों का इस्तेमाल कर सकता है, मगर सभी वैज्ञानिक अवधारणाएँ और अभिकथन आख़िरकार किन्हीं अवलोकन कथनों में रूपान्तरित होने चाहिए। मिसाल के तौर पर, इस कड़े मानदण्ड के तहत कविता को अर्थहीन और हानिहीन माना जाता, जबकि कोई तत्वमीमांसीय अभिकथन अर्थहीन मगर हानिकारक होता (क्योंकि वह सत्य होने का दावा करता)। हालाँकि, इस दार्शनिक पक्ष, जिसे तार्किक प्रत्यक्षवाद कहा जाता (और बाद में, एक अधिक संयत रूप में, तार्किक अनुभववाद), के समर्थक सम्पूर्ण विज्ञान को इन पदों में अनुवादित करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं कर सके।

इसी समय के आस-पास, कार्ल पॉपर, एक ऑस्ट्रियाई-ब्रिटिश दार्शनिक, ने एक अन्य दार्शनिक पक्ष सुझाया। यह पक्ष भी वैज्ञानिक पद्धति के विश्लेषण की तर्ज़ पर था, मगर कई मायनों में तार्किक प्रत्यक्षवाद से अलग था (**देखें चित्र-2**)। पॉपर की अभिलाषा उन्हें 'विज्ञान' और 'छद्मविज्ञान' (जैसा कि वे मानते थे) में अन्तर करने की ओर ले गई। उन्हें व्यापक रूप से उनके मिथ्याकरण के मापदण्ड के लिए जाना जाता है - कोई सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है यदि उसके खण्डन का कोई रास्ता न हो। अच्छे वैज्ञानिक सिद्धान्त स्पष्ट पूर्वकथन देते हैं जो मिथ्याकरणीय होते हैं। इसका अर्थ हुआ कि इन पूर्वकथनों का सत्यापन उस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करता; वह सिद्धान्त तो महज़ अब तक ग़लत नहीं ठहराया गया। आइंस्टाइन के कार्य से प्रभावित हो, पॉपर ने पैरवी की कि विज्ञान को जोखिम उठाने चाहिए, नए साहसी पूर्वकथन देने चाहिए और समालोचनात्मक प्रयोग सुझाने चाहिए जिनमें किसी सिद्धान्त के मिथ्याकरण की सम्भावना हो। पॉपर के विचारों की अनुगूँज विज्ञानियों के साथ बनी रहती है और उन्हें अक्सर विज्ञानियों का दार्शनिक कहा जाता है।

1950 के दशक के आस-पास, अमरीकी दार्शनिक विलर्ड वैन ऑर्मन क्वाइन ने इन प्रभावी विचारों पर एक सटीक और भेदक समालोचना पेश की। उन्होंने तर्क किया कि एक वैज्ञानिक सिद्धान्त अन्तरसम्बन्धित मान्यताओं और दावों का एक जटिल जाल है जो समग्र रूप से अनुभव से जुड़ता है। नतीजतन, हो सकता है कि किसी सिद्धान्त के प्रत्येक कथन को एकाकी रूप में आज़माना या झुठलाना (या मिथ्या सिद्ध करना) मुमकिन न हो। उन्होंने अर्थ और परीक्षण के एक सम्पूर्ण सिद्धान्त की माँग की।



चित्र-1 : फ्रांसिस बेकन ने वैज्ञानिक पद्धति सूत्रित की।
Credits: British – School Google Art Project, Wikimedia Commons. URL: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:British_-_Francis_Bacon_-_Google_Art_Project.jpg. License: CC-BY-SA.

वे दर्शनशास्त्र जो विज्ञान के लिए एक तर्कसंगत आधार तलाश रहे थे, उन्होंने खोज के सन्दर्भ (विज्ञान का विशिष्ट सामाजिक वातावरणों में निहित सहज-ज्ञान युक्त रचनात्मक दौर) को औचित्य के सन्दर्भ (दावाकृत सही सिद्धान्तों की समालोचनात्मक दार्शनिक समीक्षा) से अलग कर दिया। चूँकि पूर्वोक्त सन्दर्भ को मनोविज्ञान या समाजशास्त्र के क्षेत्र से जुड़ा माना जाता था, अतः उसे विज्ञान के दायरे के बाहर देखा जाता था।

1960 के दशक के आस-पास, अमरीकी इतिहासकार और दार्शनिक थॉमस कुह्न ने अपनी (अब प्रख्यात) किताब, द *स्ट्रक्चर ऑफ़ साइंटिफ़िक रिवॉल्यूशंस* (वैज्ञानिक क्रान्तियों की संरचना) प्रकाशित की (**देखें चित्र-4**)। इस किताब ने एनओएस पर हमारे विचारों में एक प्रमुख रूपान्तरण की शुरुआत चिह्नित की। विज्ञान के इतिहास की कुछ मुख्य घटनाओं का विश्लेषण कर, जैसे कि कोपरनिकन क्रान्ति, कुह्न ने निष्कर्ष दिया कि विज्ञानी सामान्यतः किसी विशिष्ट प्रतिमान के तहत काम करते हैं। इस मामले में वे रूढ़िवादी होते हैं कि वे प्रायोगिक डेटा में आई छोटी-मोटी असंगतियों या असहमतियों के समक्ष मौजूदा सिद्धान्तों का परित्याग नहीं कर देते। हालाँकि, समय-दर-समय इकट्ठा हुई निरी असंगतियाँ विज्ञान की सामान्य प्रक्रिया में संकट खड़ा करती हैं और मौजूदा प्रतिमान पर सवाल खड़ा करने तक ले जाती हैं। संकट के ऐसे समय में हर तरह के वैकल्पिक विचार तैरते रहते हैं। कुछ नए भरोसेमन्द विचार सर्वसम्मति को आकर्षित करते हैं, अक्सर किन्हीं विशिष्ट रूप से अनोखे नमूनों के चलते। इस तरह, एक नया प्रतिमान जन्म लेता है। इस नए प्रतिमान के साथ 'सामान्य' विज्ञान की ओर वापसी होती है, जहाँ वैज्ञानिक परिवर्तित प्रतिमान की बारीक़ियाँ और अनुप्रयोगों पर काम करने लगते हैं। अहम रूप से, जिस प्रतिमान बदलाव की कुह्न बात करते हैं वह किसी विशुद्ध तर्कसंगत प्रक्रिया से शासित नहीं होता है। इसमें समग्र रूप से वैज्ञानिक समुदाय में एक सामाजिक

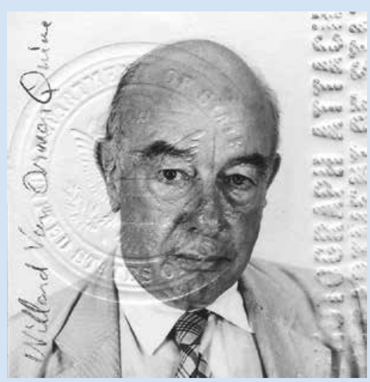


चित्र-2 : कार्ल पॉपर व्यापक रूप से मिथ्याकरण के पैमाने के लिए जाने जाते हैं।
Credits: DorianKBandy, Wikimedia Commons. URL: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Photo_of_Karl_Popper.jpg. License: CC-BY-SA.

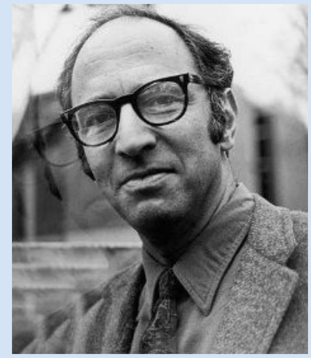
मतैक्य निर्मित करना शामिल होता है। किसी विशिष्ट समय-बिन्दु पर वैज्ञानिक समुदाय की सर्वसम्मति हासिल करने वाले प्रतिमान का अनुपालन कॉलेजों और ग्रेजुएट स्कूलों के शिक्षार्थियों को इसके अनुरूप तैयार करके सुनिश्चित किया जाता है।

कुह्न से हर कोई सहमत नहीं था। एक तरफ़ तो, हंगेरियन दार्शनिक ईमरे लाकाटोस को कुह्न के विचारों में गर्भित वैज्ञानिक प्रगति के तर्कसंगत आधार की अवहेलना अमान्य जान पड़ी। लाकटोस ने आगे जाकर एक सिद्धान्त विकसित किया जो विज्ञान में प्रतिमान बदलावों की व्याख्या प्रतिस्पर्धी 'शोध कार्यक्रमों' की तर्ज़ पर करता था। वहीं दूसरी तरफ़, ऑस्ट्रियाई दार्शनिक पॉल फ़ायराबेंड ने इस विचार को ख़ारिज किया कि विज्ञान के विकास के तरीक़े में कोई स्पष्ट पद्धति होती है। कुह्न के नज़रिए में विज्ञान की एक सामान्य प्रक्रिया के विचार की भूमिका बहुत अहम थी। वे मानते थे कि यही वह प्रक्रिया है जो किसी मान्य प्रतिमान की गहराई तक जाती है, जिससे असंगतियों को खोजना मुमकिन हो पाता है और जोकि अन्ततः प्रतिमान में बदलाव लाती है। फ़ायराबेंड ने, इसके विपरीत, सामान्य विज्ञान की नियमित दिमाग़ को स्तब्ध कर देने वाली गतिविधियों की आलोचना की। उन्होंने ज़ोर दिया कि विज्ञान कल्पनाशीलता की रचनात्मक छलाँगें लगाकर आगे बढ़ता है, जो मौजूदा विचारों को चुनौती देती हैं। फ़ायराबेंड के फ़लसफ़े (दर्शन) का सारांश अक्सर एक आकर्षक वाक्यांश 'एनीथिंग गोज़' (सब चलता है) में समेटा जाता है। उनकी किताब *अगेंस्ट मेथड* (पद्धति के विरुद्ध) विज्ञान में रचनात्मकता का जश्न मनाती है और कल्पनाशीलता की आज़ादी की पैरवी करती है। तो इसलिए, जहाँ लाकाटोस को कुह्न के विज्ञान के नज़रिए में निहित अव्यवस्था चिन्ताजनक लगी, वहीं फ़ायराबेंड ने कुह्न के नज़रिए की आलोचना वैज्ञानिक प्रगति को लेकर उसकी व्यवस्थित और यांत्रिक दृष्टि के लिए की।

कुह्न के सिद्धान्त की चाहे जो योग्यताएँ हों, यह 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विज्ञान के दर्शनशास्त्र में एक समाजशास्त्रीय आयाम जोड़ने के लिए ज़िम्मेदार रहा। अलबत्ता,



चित्र-3 : विलर्ड वैन ऑर्मन क्वाइन ने तर्क दिया कि एक वैज्ञानिक सिद्धान्त अन्तरसम्बन्धित मान्यताओं और दावों का एक जटिल जाल है जो समग्र रूप से अनुभव से जुड़ता है।
Credits: Stampit at English Wikipedia, Wikimedia Commons. URL: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Willard_Van_Orman_Quine_passport.jpg. License: CC-BY-SA.



चित्र-4 : थॉमस कुह्न ने सुझाया कि वैज्ञानिक क्षेत्र आवधिक 'प्रतिमान बदलावों' से गुज़रते हैं।
Credits: Bill Pierce, Wikimedia Commons. URL: https://en.wikipedia.org/wiki/File:Thomas_Kuhn.jpg. License: CC-BY-SA.

कुछ समाजशास्त्रियों को विज्ञान का मानक दर्शनशास्त्र अप्रासंगिक लगा। उन्होंने ज़ोर दिया कि जिस असल तरीक़े से विज्ञानी काम करते हैं, उसकी समालोचनात्मक और बारीक़ी से जाँच-पड़ताल करने पर ही एनओएस को समझा जा सकता है। इस विकास ने एनओएस पर बहस को कई अलग-अलग दिशाओं में धकेल दिया है, जिसका यहाँ पर्याप्त रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता। हालाँकि, जो मुमकिन है, वह यह कि इस विकास की भूमिका को स्वीकारा जाए जिसका असर विज्ञान में प्रगति सम्भव करने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक मानकों की हमारी समझ पर होता आया है। मिसाल के तौर पर, यह साफ़ है कि विज्ञान की वे मज़बूत सामाजिक संस्थाएँ (विशेषकर यूरोप में वैज्ञानिक सोसायटीज़, जैसे कि द रॉयल सोसायटी) जो मुक्त और जनतांत्रिक चर्चा, शोध की सहकर्मी समीक्षा और वैज्ञानिक नियमों के आम स्वामित्व के मानकों को लेकर काम करती थीं, उनका गठन विज्ञान के विकास में उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना व्यक्तिगत वैज्ञानिकों की प्रतिभा।

पर एक विवेकशील नज़रिए को प्रोत्साहित करता है। वहीं अन्य तर्क करेंगे कि आधुनिक टेक्नोलॉजी - इसके फ़ायदों, जोखिमों, हमारी सेहत और वातावरण पर इसके असर आदि - से परिचित होना हमारे लिए दिन-ब-दिन और भी ज़्यादा ज़रूरी होता जा रहा है। उन तमाम तरीक़ों को ध्यान में रखा जाए, जिनके ज़रिए विज्ञान और टेक्नोलॉजी आज हमारी ज़िन्दगियों पर असर डालते हैं, तो यह परिचय हमें इन मुद्दों पर सुविचारित राय बनाने और बेहतर सूचित चुनाव करने में मदद कर सकता है। इन उद्देश्यों के साथ कई अन्य समवर्गी उद्देश्यों को कभी-कभी 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी साक्षरता' के नाम तले जोड़ा जाता है। इस पद (term) के

कई प्रकार हैं, साथ-ही-साथ कई रंग और बारीक़ियाँ भी। मगर यह कहना ठीक होगा कि एनओएस पढ़ाने का तर्काधार क़रीब से स्कूली विज्ञान शिक्षण के इसी सामान्य लक्ष्य से जुड़ा है।

क्या इसका अर्थ यह हुआ कि हम एनओएस के शिक्षण को विज्ञान की 'वास्तविक' विषयवस्तु की क़ीमत पर शामिल करें? ऐसा करने पर, क्या हम भावी वैज्ञानिकों के ज्ञान की गुणवत्ता के साथ खिलवाड़ नहीं करेंगे? क्या हमारा देश विज्ञान में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक धार नहीं खो देगा? साथ ही, क्या एनओएस का शिक्षण शिक्षार्थियों के उस विशाल बहुसंख्यक हिस्से के किसी असल काम का भी रहेगा जिसकी चर्चा हम कर रहे हैं? शिक्षकों (और वैज्ञानिकों) के बीच व्यापक रूप से साझे ये सरोकार मुख्यतः इसलिए उठते हैं क्योंकि यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है कि एनओएस का शिक्षण और अधिगम आख़िर किस तरह विज्ञान की बाक़ी की पाठ्यचर्या के लिए प्रासंगिक है।

अव्वल तो, यह मानना ठीक नहीं है कि एनओएस केवल उन शिक्षार्थियों के लिए प्रासंगिक है जो भावी वैज्ञानिक बनने की तैयारी कर रहे हों या यह उन शिक्षार्थियों के लिए अप्रासंगिक है जो 10वीं के बाद विज्ञान से अपना औपचारिक रिश्ता ख़त्म कर देते हैं। कई विस्तृत अध्ययन ज़ाहिर करते हैं कि अपने विषयों को लेकर विद्यार्थियों के जो ज्ञानमीमांसीय और सत्तामीमांसीय विश्वास होते हैं, उनका असर उन विद्यार्थियों की विषयवस्तु सम्बन्धी आलोचनात्मक समझ पर होता है। यह सुझाता है कि एनओएस को समझना न सिर्फ़ विज्ञान और प्रौद्योगिकी साक्षरता को बढ़ावा देने के सामान्य लक्ष्य को साधने के लिए प्रासंगिक है बल्कि विज्ञान विद्यार्थियों को इस विषय की गहरी समझ विकसित करने में भी मददगार है। दूसरा, परिकल्पना विज्ञान की विषयवस्तु को हल्का (या छिछला) करने की नहीं है, बल्कि उसे एनओएस पढ़ाने के कल्पनाशील तरीक़े के रूप में इस्तेमाल करने की है। दूसरे शब्दों में, एनओएस को पाठ्यपुस्तक की एक पृथक इकाई में रख दिए गए अमूर्त सामान्यीकृत उपदेशों के माध्यम से नहीं बल्कि इसे विज्ञान की विषयवस्तु के साथ गूँथ कर पढ़ाया जाना है।

क्या पढ़ाया जाए?

जो कुछ पैराग्राफ़ पाठ्यपुस्तकें एनओएस को समर्पित करती हैं वे ठेठ रूप से निम्नलिखित के किसी रूप का वर्णन करते हैं : *"विज्ञान में प्रकृति के व्यवस्थित व निष्पक्ष अवलोकन करने की प्रक्रिया, सावधानी से प्रयोग करना और उनसे तार्किक निष्कर्ष निकालना शामिल होते हैं। इस तरह, हम प्रकृति के नियमों तक पहुँचते हैं। हम अनुभवजन्य नियमों को समझने के लिए परिकल्पना सुझाते हैं, जो हमें ज्ञात भौतिक परिघटनाओं को समझाने के लिए विस्तृत सिद्धान्त निर्मित करने तक ले जाती हैं। सिद्धान्त नई परिघटनाओं का पूर्वकथन भी करते हैं। यदि पूर्वकथन सत्यापित हो जाता है, तो सिद्धान्त की पुष्टि हो जाती है। विज्ञान किसी प्रभुत्व के आगे नहीं झुकता; यह अवलोकनों और प्रयोगों से प्राप्त किया गया वस्तुनिष्ठ ज्ञान है।"* एनओएस के इस विवरण में काफ़ी कुछ सार बनता है, हालाँकि जैसे-जैसे हम आगे चर्चा करेंगे, यह सरलीकृत लगने लगेगा।

इतिहास में और बल्कि आज तक भी, एनओएस दार्शनिक जाँच का विषय रहा है। पिछली चार सदियों में विज्ञान में हुई तेज़ प्रगति ने एनओएस पर हमारे विचारों को लेकर कई सक्रिय चर्चाओं को राह दिखाई है (**देखें बॉक्स-1**)। इनसे कुछ नई अन्तरदृष्टियाँ मिली हैं। पहली तो, विज्ञान केवल अवलोकनों और प्रायोगिक जानकारियों से अनुगमन करने की प्रक्रिया मात्र नहीं है। इसमें अक्सर कल्पनाशील और मूलभूत नए विचार शामिल होते हैं जो ज़रूरी नहीं कि अनुभवजन्य साक्ष्यों द्वारा सुझाए गए हों। उदाहरण के तौर पर, विज्ञान के कुछ सबसे सफल सिद्धान्त एकीकरण की प्रबल इच्छा या सरलीकरण और सममिति के लिहाज़ के चलते उभरे हैं। दूसरी, यद्यपि प्रकृति के अवलोकन अक्सर सभी वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल के प्रस्थान बिन्दु होते हैं, सभी अवलोकन निष्पक्ष नहीं होते। अमूमन वे 'सिद्धान्तों से लदे' होते हैं। इसका मतलब हुआ कि हम जो कुछ अवलोकन करते हैं और जिस तरह के प्रयोग रचते हैं उन्हें सिद्धान्त परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से राह दिखाते हैं। मगर यह ज़रूरी नहीं कि इससे विज्ञान की वस्तुनिष्ठता ख़तरे में पड़ती हो। तीसरी, अवलोकन और प्रयोगात्मक डेटा सही सिद्धान्तों को पूरी तरह से निर्धारित करते हैं; यानी कि ऐसे कई अलग-अलग सिद्धान्त हो सकते हैं जो उपलब्ध डेटा के साथ मेल खाते हों। चौथी, विज्ञान विशुद्ध रूप से कोई संज्ञानात्मक प्रयत्न नहीं है। हालाँकि यह प्रकृति के अनुभवजन्य तथ्यों से ज़रूर बँधा हुआ है, तब भी वैज्ञानिकों के बीच का कुछ सामाजिक मतैक्य विज्ञान में शामिल होता है। इसके विकास के लिए इसे सामाजिक-सांस्कृतिक मानकों और स्थितियों के सुगमन की भी ज़रूरत होती है। पाँचवी, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और समाज जटिल तरीक़ों से आपस में गुँथे हुए हैं - एक-दूसरे से प्रभावित होते और एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हुए। इसके चलते, यह ज़रूरी है कि वैज्ञानिक अभ्यास के सम्भावित ख़तरों और साथ ही टेक्नोलॉजी के ग़ैर-आलोचनात्मक व अविवेकी उपयोग के प्रति सचेत रहा जाए।

जहाँ एनओएस पर इतनी लम्बी ऐतिहासिक बहस अब तक चली आ रही है, ऐसे में हम शिक्षार्थियों के लिए ऐसा क्या चाहेंगे जिसके बारे में वे स्कूल में सीखें? हालाँकि एनओएस से परिप्रेक्ष्यों और जटिल दार्शनिक पक्षों की एक विस्तृत श्रेणी जुड़ी है, यह व्यापक तौर पर माना जाता है कि तरुण विद्यार्थी सामान्यतः स्वीकृत नए विचारों का मर्म सीख सकते हैं। इसका इस्तेमाल स्कूली विज्ञान पाठ्यचर्या के कुछ व्यापक उद्देश्यों को निर्धारित करने

के लिए किया जा सकता है। इन पर संक्षिप्त में रोशनी डालते हुए, एनओएस को विज्ञान के निम्नलिखित पहलुओं की अहमियत समझने में शिक्षार्थियों की मदद करनी चाहिए :

- **दायरा :** विज्ञान अनुभवजन्य साक्ष्यों के आधार पर भौतिक दुनिया का वर्णन और व्याख्या करने की कोशिश करता है। कुछ ज्ञानक्षेत्र इसके दायरे के परे हो सकते हैं।
- **पद्धतियाँ :** विज्ञान विविध प्रकार के दृष्टिकोणों और पद्धतियों का इस्तेमाल करता है। विज्ञान की ऐसी कोई एक सार्वभौमिक पद्धति नहीं है। अकेला अनुगमन इसमें शामिल नहीं है। परिकल्पना और सिद्धान्त निर्मित करने के लिए सृजनात्मकता और कल्पनाशीलता भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। किसी सिद्धान्त के निर्धारण के लिए अवलोकन और प्रयोग अक्सर नाकाफ़ी होते हैं। विज्ञान में विशेषज्ञ विवेचन भी शामिल होता है, न सिर्फ़ तार्किक निगमन। अतः विज्ञान में मतभेद भी हो सकते हैं।
- **सामाजिक पहलू :** विज्ञान एक सहकारी बहुसांस्कृतिक इन्सानी उद्यम है जिसमें कुछ मशहूर व्यक्तियों समेत जो एक अहम क़िरदार निभाते हैं असंख्य स्त्रियों और पुरुषों के योगदान शामिल हैं। मुक्त बहस, सहकर्मी समीक्षा और ज्ञान पर आम स्वामित्व के मानकों का अभ्यास करने वाली सामाजिक संस्थाएँ भी विज्ञान के विकास के लिए बहुत ज़रूरी हैं। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के बीच की कड़ियाँ उन मुद्दों तक लेकर जा सकती हैं जिन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक समाधान की ज़रूरत है।
- वैज्ञानिक ज्ञान : यह गतिशील है और नए अनुभवजन्य साक्ष्यों के समक्ष संशोधन के अधीन है।

एनओएस कैसे पढ़ाएँ

एनओएस से जुड़ा सबसे अहम मगर मुश्किल सवाल है - इसे स्कूली स्तर पर पढ़ाने के लिए हम किस तरह के शिक्षाशास्त्र का इस्तेमाल करें? यह विचार कि विज्ञान शिक्षण में अकेली विषयवस्तु काफ़ी नहीं है, नया नहीं है। इसे 1960 के दशक (या उससे भी पहले) से पाठ्यचर्या सुधारों के इतिहास में देखा गया है। 1970 के दशक के आस-पास, कुछ शैक्षणिक सुधारों ने विज्ञान की विषयवस्तु से ज़्यादा इसकी प्रक्रियाओं को पढ़ाने की ज़रूरत पर बल दिया। इन प्रक्रियाओं में शामिल हैं - अवलोकन, मापन, वर्गीकरण, विश्लेषण, अनुमान, विवेचन, प्रयोग, पूर्वकथन या पूर्वानुमान और संचार करना। हालाँकि, इस दृष्टिकोण के समालोचनात्मक मूल्यांकन में कुछ शिक्षाविदों ने इस आधार पर सवाल उठाया है कि इस दृष्टिकोण में जो सामान्य अन्तरणीय प्रक्रियाओं का सेट निहित है वह सभी प्रकार के विज्ञान में समान है।

अब कुछ वक़्त से, विज्ञान अधिगम और शिक्षण के लिए एक जाँच-पड़ताल आधारित दृष्टिकोण के प्रति व्यापक रूप से झुकाव लगता है। रचनावादी दर्शन पर आधारित यह दृष्टिकोण विज्ञान की प्रक्रियाओं को सीखने तक सीमित न होकर, उसके परे जाकर तरह-तरह के कौशलों को भी शामिल करता है, जैसे - सवाल पूछना, समालोचनात्मक चिन्तन, साक्ष्य-आधारित व्याख्या करना, व्याख्या का औचित्य सिद्ध करना और व्याख्याओं का मौजूदा वैज्ञानिक ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना। दूसरे शब्दों में, यह दृष्टिकोण पैरवी करता है कि शिक्षार्थी एक ऐसे ढंग से विज्ञान सीखें जो मिलता-जुलता है उस ढंग से जिससे पेशेवर वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल करते हैं। इसमें जाँच-पड़ताल आधारित कार्यों की श्रेणी तैयार करना शामिल है, ऐसे कार्य जो सवाल पूछते हों और साक्ष्य आधारित व्याख्या की माँग करते हों। ये छोटे बच्चों के लिए अपेक्षाकृत सरल हो सकते हैं और वरिष्ठ शिक्षार्थियों के लिए अधिक जटिल। इनके ध्यान के केन्द्र भी अलग-अलग हो सकते हैं - कुछ कार्य विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज (साइंस, टेक्नोलॉजी और सोसाइटी या एसटीएस) के मुद्दों से जुड़े हो सकते हैं, तो वहीं अन्य अधिक विषय-आधारित हो सकते हैं। किसी जाँच-पड़ताल में उसी जाँच-पड़ताल के तरीक़े पर चिन्तन भी शामिल हो सकता है, जिससे कि एनओएस के शैक्षणिक उद्देश्य सहज ही शामिल हो सकते हैं।

एक अन्य दृष्टिकोण एनओएस पढ़ाने के लिए विज्ञान के इतिहास (हिस्ट्री ऑफ़ साइंस या एचओएस) के इस्तेमाल की सिफ़ारिश करता है। हालाँकि यह भी कोई नया विचार नहीं है, इसके पक्ष में कुछ मुख्य बिन्दु हैं :

- एचओएस में मानवी आख्यान शामिल होते हैं जो विज्ञान को सजीव बनाते हैं और शिक्षार्थियों की रुचि बनाए रखते हैं।
- एचओएस में अक्सर शिक्षार्थियों की स्वतःस्फूर्त धारणाओं से मिलते-जुलते प्रसंग होते हैं और इस तरह यह हमें उनके विषयवस्तु-विशेष विचारों का पूर्वानुमान लगाने और उन्हें ठीक करने में मदद करता है।
- यह जानना कि किस तरह मौजूदा विज्ञान इतिहास के अलग-अलग समयों के प्रतिस्पर्धी विचारों से उपजा है, समालोचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा दे सकता है।
- आख़िर में, एचओएस एनओएस सीखने के लिए सबसे सहज वातावरण प्रदान करता है।

चलते-चलते

जैसा कि नॉर्मन लेडरमैन, इलिनॉय इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (आईआईटी) में गणित और विज्ञान शिक्षण के एक विशिष्ट प्रोफ़ेसर, ने दृढ़ता पूर्वक दलील दी है कि एनओएस

के उद्देश्यों को प्राथमिक तौर पर संज्ञानात्मक नतीजे माना जाना चाहिए जिनका ठीक तरह से आकलन किया जा सकता हो। चूँकि इस बात की सम्भावना कम है कि इन उद्देश्यों को निर्विवाद रूप से आत्मसात किया जाएगा इसलिए शिक्षण को इन्हें स्पष्ट रूप से सामने लाना होगा, फिर चाहे हम इसके लिए जाँच-पड़ताल आधारित या इतिहास-आधारित अभिगम अपनाएँ। दूसरे शब्दों में, यदि हम शिक्षार्थियों की एनओएस सम्बन्धी समझ को बेहतर करना चाहते हैं तो उसके लिए जाँच-पड़ताल आधारित कार्यों और एचओएस-आधारित सजीव वर्णनों की एक सम्पूर्ण श्रेणी, जो स्पष्ट रूप से एनओएस पर केन्द्रित हो, तैयार किए जाने की ज़रूरत है।

मुख्य बिन्दु



- अनेक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि विज्ञान की प्रकृति (एनओएस) न सिर्फ़ विज्ञान और प्रौद्योगिकी साक्षरता को बढ़ावा देने के सामान्य लक्ष्य को साधने के लिए प्रासंगिक है, बल्कि यह विज्ञान के विद्यार्थियों को इस विषय की गहरी समझ विकसित करने में भी मददगार है।
- एनओएस को पाठ्यपुस्तक की एक पृथक इकाई में रख दिए गए अमूर्त सामान्यीकृत उपदेशों के माध्यम से नहीं, बल्कि इसे विज्ञान की विषयवस्तु के साथ गूँथ कर पढ़ाया जाना है।
- स्कूली स्तर पर एनओएस के बारे में जो पढ़ाया जाता है उसे शिक्षार्थियों की मदद विज्ञान के अलग-अलग पहलुओं की अहमियत समझने में करनी चाहिए, अलग-अलग पहलू, जैसे - विज्ञान का दायरा; इसकी कई पद्धतियाँ और दृष्टिकोण, जिनमें विशेषज्ञ विवेचन की भूमिका और मतभेदों की सम्भावना भी शामिल है; इस सहकारी बहुसांस्कृतिक इन्सानी उद्यम के सामाजिक पहलू; तथा वैज्ञानिक ज्ञान की गतिशील प्रकृति।
- स्कूली स्तर पर एनओएस पढ़ाने के लिए दो शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण - जाँच-पड़ताल आधारित और विज्ञान के इतिहास (एचओएस) पर आधारित - सुझाए गए हैं।
- एनओएस के उद्देश्यों को प्राथमिक तौर पर संज्ञानात्मक नतीजे माना जाना चाहिए जिन्हें शिक्षण द्वारा स्पष्ट रूप से सामने लाया जाता है और जिनका ठीक तरह से आकलन किया जा सकता है।

Acknowledgments: It is a pleasure to thank J. Ramadas, S. Chunawala, and K. Subramaniam of Homi Bhabha Centre for Science Education (HBCSE-TIFR), Mumbai as well as the anonymous reviewers for going through the article critically, and offering useful comments for its improvement.

Note: This article was first published in i wonder…, Nov 2015, pg. 33-38. This version is reformatted and revised for conciseness.

References:

1. Godfrey-Smith P (2003). 'Introduction to Philosophy of Science'. The University of Chicago Press: Chicago.
2. NGSS (2013). 'Next-generation Science Standards: For States, by States'. Appendix H. URL: www.nextgenscience.org.
3. Pumfrey S (1991). 'History of Science in the National Science Curriculum: a critical review of resources and their aims'. British Journal of the History of Science. 24, 61–78.
4. Osborne J, Ratcliffe M, Bartholomew H, Collins S, & Duschl R (2002). 'EPSE Project 3: Teaching pupils ideas-about-science'. School Science Review, 84 (307), 29–33.
5. Taylor JL & Hunt A (2014). In Matthews MR (ed.) op. cit. 2045-2082. 'History and Philosophy of Science and the Teaching of Science in England'. Springer: Dordrecht, Netherlands.
6. Erduran S & Dagher ZR (2014). 'Reconceptualizing the Nature of Science for Science Education'. Springer: Dordrecht, Netherlands.
7. Millar R & Driver R (1987). 'Beyond Processes'. Studies in Science Education, (14) 33–62.
8. Flick LB & Lederman NG (eds.). (2006). 'Scientific Inquiry and Nature of Science'. Springer: Dordrecht, Netherlands.
9. Holton G & Brush SG, 3rd ed. (2001). 'Physics, the Human Adventure'. Rutgers University Press: New Brunswick, NJ.
10. Matthews MR (ed.) (2014). 'International Handbook of Research in History, Philosophy, and Science Teaching'. Springer: Dordrecht, Netherlands.
11. Lederman NG (2006). In Flick LB & Lederman NG (eds.) 2006. op. cit, 301-317. 'Syntax of Nature of Science within Inquiry and Science Instruction'. Springer: Dordrecht, Netherlands.

अरविन्द कुमार होमी भाभा सेंटर फ़ॉर साइंस एजुकेशन (एचबीसीएसई-टीआईएफ़आर), मुम्बई के प्रोफ़ेसर और केन्द्र निदेशक रह चुके हैं। उनकी अकादमिक दिलचस्पी मुख्य रूप से सैद्धान्तिक भौतिकी, भौतिकी शिक्षण और विज्ञान शिक्षण में विज्ञान के इतिहास और दर्शन की भूमिका में है। उनसे arvindk@hbcse.tifr.res.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अतुल वाधवानी **पुनरीक्षण :** उमा सुधीर **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय